मुझ में; **ते**=वे (हैं); **तेषु**=उनमें; **च**=तथा, **अपि**=भी; **अहम्**=मैं (हूँ)।

अनुवाद

मैं किसी से द्वेष नहीं करता और न किसी का पक्षपात करता हूँ; जीवमात्र में मेरा समभाव है। परन्तु जो प्राणी भक्तिभाव से मेरी सेवा करते हैं, वे मेरे प्रिय मुझमें ही स्थित हैं और मैं भी उनका प्रेमी हूँ, उनमें हूँ।।२९।।

तात्पर्य

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि यदि श्रीकृष्ण का जीवमात्र में समभाव है और कोई भी उनका विशेष प्रिय नहीं है, तो फिर वे अपनी भक्ति में निरन्तर तत्पर रहने वाले भक्तों का विशेष ध्यान क्यों रखते हैं? वास्तव में यह भेदभाव नहीं है; यह तो स्वाभाविक ही है। कोई मनुष्य महादानी हो सकता हैं, परन्तु वह भी अपनी सन्तान में विशेष रुचि रखता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि जीवमात्र, चाहे वह किसी भी योनि में क्यों न हो, उनका पुत्र है और इसीलिए वे सम्पूर्ण प्राणियों की आवश्यकताओं की उदारता से पूर्ति करते हैं। वे उस मेघ जैसे हैं जो पाषाण, थल अथवा जल में भेद किये बिना सर्वत्र समान रूप से वर्षा करता है। परन्तु भक्त अवश्य उनके विशेष कृपापात्र हैं, अर्थात् श्रीभगवान् विशेषरूप से भक्तवत्सल हैं। उन भक्तों का यहाँ वर्णन है—ये नित्य-निरन्तर कृष्णभावनाभावित रहते हैं; इसलिए इनकी सदा-सर्वदा श्रीकृष्ण में दिव्य स्थिति है। 'कृष्णभावना' शब्द से ही प्रकट हो जाता है कि इस प्रकार भावित मति मनुष्य श्रीभगवान् में स्थित जीवन्मुक्त योगी हैं। श्रीकृष्ण ने यहाँ स्पष्ट कहा है: **मयि ते**—'वे मुझ में हैं।' अतएव यह स्वाभाविक है कि भगवान् श्रीकृष्ण की भी उनमें स्थिति है। यह अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इससे श्रीभगवान् के इन शब्दों का तात्पर्य भी स्पष्ट हो जाता है: **अस्ति न प्रियः, ये भजन्तिः।** 'जीव जिस अनुपात में मेरी शरण लेता है, उसी के अनुसार मैं उसका ध्यान रखता हूँ।' श्रीभगवान् एवं भक्त—दोनों चेतन हैं; इसी से यह चिन्मय रस-विनिमय होता है। इसे स्वर्णमणि न्याय से समझा जा सकता है। मुद्रिका में जड़ित मणि अधिक सुन्दर लगती है। एक साथ होने पर वास्तव में दोनों स्वर्ण और मणि की शोभा बढ़ जाती है। श्रीभगवान् और जीव में शाश्वत् प्रभा है। भगवत्सेवा के उन्मुख जीव स्वर्ण की सी शोभा पाता है; श्रीभगवान् मणि हैं ही। इस प्रकार यह जोड़ी बड़ी अभिराम है। शुद्धान्तःकरण जीव भक्त कहलाते हैं। श्रीभगवान् भी अपने भक्त के भक्त बन जाते हैं। भक्त और भगवान् में इस विनिमय-सम्बन्ध के बिना भागवत-दर्शन (सविशेषवाद) तो सिद्ध ही नहीं हो सकता। निर्विशेषवाद में परतत्त्व और जीव में परस्पर कोई रस-विनिमय नहीं है; सविशेषवाद में ऐसा अवश्य है।

यह अति प्रसिद्ध है कि श्रीभगवान् कल्पवृक्ष हैं। सामान्य रूप से माना जाता है कि कल्पवृक्ष की भाँति भगवान् सबकी इच्छापूर्ति करते हैं। परन्तु यहाँ इस तत्त्व का विशेष विवेचन है। यहाँ श्रीभगवान् को अपने भक्तों का पक्षपाती कहा गया है, जो केवल उनकी विशिष्ट भक्तवत्सलता को प्रकट करता है। भक्तों के साथ श्रीभगवान्